

प्रशासनिक सुविधा बनाम स्वायत्तता: औपनिवेशिक भारत में वित्तीय हस्तांतरण का मिथक

Prof. Shubha Sinha

Shyama Prasad Mukherjee College for Women

University of Delhi

Prof. Srikant Pandey

Delhi College of Arts & Commerce

University of Delhi

सार

यह लेख भारत में ब्रिटिश शासन के शुरुआती दौर में वित्तीय हस्तांतरण की प्रकृति और उद्देश्य का पता लगाता है। विकेंद्रीकृत शासन की आधुनिक अवधारणाओं के विपरीत, अंग्रेजों द्वारा शुरू की गई वित्तीय प्रणालियाँ मुख्य रूप से स्थानीय अधिकारियों के वास्तविक सशक्तिकरण के बजाय प्रशासनिक सुविधा और आर्थिक शोषण की ओर उन्मुख थीं। स्थायी बंदोबस्त, रैयतवारी और महलवारी जैसी राजस्व प्रणालियों के साथ-साथ प्रांतीय प्रशासनों को दी गई सीमित राजकोषीय शक्तियों की जाँच करके, अध्ययन से पता चलता है कि वित्तीय प्रतिनिधिमंडल का उपयोग स्वायत्तता के बजाय नियंत्रण के उपकरण के रूप में कैसे किया जाता था। विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रारंभिक औपनिवेशिक वित्तीय नीतियों ने एक अत्यधिक केंद्रीकृत ढाँचा स्थापित किया जिसने साम्राज्यवादी हितों को प्राथमिकता दी और भारत में राजकोषीय केंद्रीकरण को बनाए रखने की नींव रखी।

मूल शब्द : प्रशासनिक, वित्तीय, स्वायत्तता, राजकोषीय, केंद्रित ।

वित्तीय हस्तांतरण का तात्पर्य केंद्रीय प्राधिकरण से प्रशासन के निचले स्तरों पर वित्तीय शक्तियों और जिम्मेदारियों के हस्तांतरण या प्रत्यायोजन से है। भारत में शुरुआती ब्रिटिश शासन के संदर्भ में लगभग 18वीं शताब्दी के मध्य से 19वीं शताब्दी की शुरुआत तक - स्थानीय शासन को सशक्त बनाने के इरादे से वित्तीय हस्तांतरण नहीं किया गया था। इसके बजाय, यह मुख्य रूप से औपनिवेशिक हितों की सेवा करने के लिए संरचित था। ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी और बाद में, ब्रिटिश क्राउन ने वित्तीय प्रणालियों

को लागू किया जो कुशल राजस्व संग्रह और प्रशासनिक प्रबंधन की सुविधा के लिए चुनिंदा जिम्मेदारियों को विकेंद्रीकृत करते हुए प्राधिकरण को केंद्रीकृत करते थे।

ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन काल केंद्रीयकरण का युग था। 1870 ई तक देश की वित्तीय व्यवस्था पर भारत सरकार का पूर्ण नियंत्रण था। 1833 और 1853 के चार्टर के अधिनियमों के द्वारा यह केंद्रीकरण काफी कठोर हो गया था। सारे देश में राजस्व की वसूली सरकार के नाम पर होती थी और वसूल हुई धनराशि भारत सरकार के खजाने में जमा होती थी। प्रांतीय सरकारों को इस पर कोई अधिकार नहीं था क्योंकि वे केंद्र के एजेंट के रूप में कार्य करते थे। उन्हें व्यय के लिए धनराशि केंद्रीय सरकार द्वारा दी जाती थी जो राजस्व की वसूली के अनुपात में नहीं बल्कि उनकी आवश्यकता के अनुसार होती थी। प्रांतीय सरकारों पर इतना अधिक नियंत्रण था कि गवर्नर जनरल की अनुमति के बिना प्रांत ना तो किसी को नया वेतन दे सकती थी और ना ही भत्ता। राजस्व के साधन, कर की दर, कर इकट्ठा करने का ढंग और व्यय के अधिकार सब केंद्रीय सरकार के हाथ में थे।

1856 ई के अधिनियम के द्वारा ब्रिटिश भारत की वित्तीय व्यवस्था में कोई सुधार नहीं लाया गया। गदर के बाद केंद्रीय सरकार की वित्तीय अवस्था बिगड़ गई और उस पर चार करोड़ पॉइंट से अधिक का कर्ज हो गया। केंद्रीय सरकार की आय में बड़ी कमी हो गई। दूसरी ओर प्रांतीय सरकारें खर्च के लिए अधिक से अधिक रुपए की मांग करने लगी। सभी प्रांत केंद्र से अधिक से अधिक रुपए लेने का प्रयास करते थे परंतु वे राजस्व इकट्ठा करने में कोई रुचि न लेते थे। अतः बिगड़ी हुई वित्तीय अवस्था को सुधारने के लिए सरकार को कई कदम उठाने पड़े।

वित्तीय सुधार के लिए यह आवश्यक समझा गया कि उसका भी विकेंद्रीयकरण हो और प्रान्तों को वित्तीय उत्तरदायित्व सौंपा जाए। वित्तीय विकेंद्रीकरण की ओर सबसे पहला कदम सरकार ने 1870 ई में उठाया। उसने प्रांतीय सरकारों को स्थानीय वित्त के प्रशासन का उत्तरदायित्व सौंपा। प्रांतीय सरकार को पुलिस, जेल, चिकित्सा सेवा, रजिस्ट्रेशन शिक्षा, सड़क, इमारतें तथा अन्य विकास विभाग सौंपा गया। इन विभागों की आय प्रांतीय सरकारों को मिलती थी। इन विभागों का खर्च का पूर्ण दायित्व प्रांतीय सरकारों पर था। वे इन विभागों से प्राप्त आमदनी तथा केंद्रीय अनुदान द्वारा इन विभागों का खर्च चलाती थी। विभागों के बीच में धन का बंटवारा करने के लिए अतिरिक्त व्यय की व्यवस्था करने के लिए तथा आवश्यकता पड़ने पर स्थानीय कर उगाहने के लिए प्रांतीय सरकारों को पूर्ण अधिकार दिया गया। इन सुधारों का परिणाम उत्तम हुआ। प्रांतीय सरकारों ने अपने खर्चों में कमी की तथा केंद्र एवं प्रांतों के संबंध अच्छे हो गए। लेकिन प्रांतों में राजस्व को बढ़ाने की रुचि पैदा नहीं हुई।

लॉर्ड लिटन ने 1877 ई में सुधारों को और आगे बढ़ाया। उसने बाकी प्रांतीय सेवाओं का नियंत्रण भी प्रांतों को सौंप दिया। जैसे भूमि राजस्व उत्पादन शुल्क साधारण प्रशासन विधि न्याय आदि। केंद्रीय सरकार ने निश्चित अनुदान में वृद्धि नहीं की बल्कि सरकारों को अतिरिक्त खर्चों की पूर्ति के लिए राजस्व की कुछ निश्चित मदें सौंप दी गई, जैसे उत्पादन शुल्क स्टांप का लाइसेंस कर। इसका उद्देश्य प्रांतों को कर वसूलने के लिए उत्साहित करना तथा उनमें रुचि पैदा करना था।

वित्तीय विकेंद्रीकरण की दिशा में अगला कदम 1881 ईस्वी में लॉर्ड रिपन की सरकार के द्वारा उठाया गया। केंद्र द्वारा प्रांतों को दिए जाने वाले निश्चित अनुदान को समाप्त कर दिया गया। राजस्व की मदों को तीन वर्गों में

बांटा गया-भारतीय, प्रांतीय और विभाजित। केंद्रीय सूची के अंतर्गत दिए गए मदों में कुछ निम्नलिखित उल्लेखनीय थे, भू राजस्व, नमक, सिक्के, डाक तार, रेल आदि। प्रांतीय सूची के अंतर्गत सार्वजनिक कार्य के विभाग के प्राप्त आय को रखा गया। बाकी विभाग जैसे स्टॉप, अनुदान कर, वन। रजिस्ट्रेशन और सिंचाई एक निश्चित मात्रा में केंद्रों और प्रांतों में बाँट दिया गया।

इस प्रकार की वित्त व्यवस्था में हर पांचवें वर्ष में संशोधन लाया जाता था। इस प्रकार के संशोधन कई बार किए गए फिर भी वित्तीय व्यवस्था में बहुत अधिक सुधार नहीं हुआ। भूमि राजस्व आय का मुख्य साधन था जिसे कुछ प्रतिशत प्रांतीय सरकारों को दे दिया जाता था। प्रांतीय सरकारों की आय फिर भी पूरी नहीं थी। इसके अतिरिक्त जब कभी वित्त व्यवस्था में संशोधन लाया जाता उस समय की भारत सरकार बची हुई रकम स्वयं ले लेती थी। वह बटवारा की व्यवस्था को संशोधन के समय अपने पक्ष में कर लिया करती थी। इन कारणों से प्रांतों की आर्थिक दशा में विशेष सुधार नहीं हुआ और उनमें बचत करने की प्रवृत्ति भी नहीं रह गई, क्योंकि बची हुई रकम को भारत सरकार ले लेती थी।

उपरोक्त त्रुटि को दूर करने के लिए 1904 ई में लॉर्ड कर्जन ने तत्कालीन अर्थव्यवस्था को अर्द्ध स्थाई बना दिया। केवल नितांत आर्थिक आवश्यकता पड़ने पर ही इनमें किसी प्रकार का परिवर्तन किया जाता था। इसका परिणाम यह हुआ की प्रांतों को कर वसूलने और खर्च करने में काफी छूट मिली। अब प्रांत भी अनुपयोगी खर्चों को धीरे-धीरे बंद करने लगे और उनमें बचत करने की प्रवृत्ति आने लगी। केंद्रीय सरकार को काफी बचत हुई और उसके प्रांतों को अनुदान संबंधी व्यय में राहत मिली। इससे केंद्रीय और प्रांतीय सरकारों के संबंध काफी अच्छे हो गए।

1909 ईस्वी में विकेंद्रीकरण आयोग ने केंद्रीय और प्रांतीय सरकारों के बीच वित्तीय संबंध की जांच पड़ताल की। उसने तत्कालीन व्यवस्था के प्रति संतोष व्यक्त किया। आयोग ने वित्तीय व्यवस्था में किसी मौलिक परिवर्तन का सुझाव नहीं दिया।

फिर भी 1912 में लॉर्ड हार्डिंग ने वित्तीय व्यवस्था में सुधार किया और उसने इसे स्थाई बना दिया। निर्धारित अनुदान की मात्रा को कम कर दिया गया और राजस्व में प्रांतों के हिस्से को बढ़ा दिया गया। वन से आय प्रांतों पर छोड़ दिया गया। अकाल सहायता का बोझ प्रांतों पर पड़ता था।

उपर्युक्त सुधारों के परिणामस्वरूप 1919 ई में मोंटफोर्ड सुधार के पूर्व भारत में केंद्र और प्रांतों के बीच एक वित्तीय संबंध कायम हो चुका था।

सारे विषय तीन सूचियां में बंटे हुए थे -केंद्रीय, प्रांतीय और विभाजित। अखिल भारतीय महत्व के विषय केंद्रीय सूची में थे जैसे सुरक्षा, वैदेशिक संबंध, डाक तार और रेलवे। प्रांतीय सूची में पूर्णतः प्रांतों के अधीन था। विभाजित सूची के विषय थे भू राजस्व, स्टाम्प, वन और सिंचाई। दोनों सरकारों के बीच विचार विमर्श के बाद इनसे हुई आय का बंटवारा हुआ था, फिर भी केंद्रीय सरकार का नियंत्रण बहुत अधिक था।

स्थानीय करों के अतिरिक्त सभी करो पर भारत सरकार का पूर्ण नियंत्रण था। करो के बारे में प्रांतीय सरकारों के हर प्रस्ताव को केंद्र की स्वीकृति आवश्यक थी।

प्रांतीय बजटों को स्वीकृति के लिए केंद्र के पास भेजा जाता था।

प्रांतों को कर्ज देने का अधिकार नहीं था जिसके कारण खुले बाजार से प्रांतीय सरकारी धन नहीं ले सकती थी।

प्रांतों के वित्त नियंत्रण करने के लिए भारत सरकार ने कई प्रकार के नियम बनाए थे। जैसे है सिविल सर्विस, रेगुलेशन, सिविल अकाउंट्स, कोष, पब्लिक वर्क्स कोड आदि।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है की वित्तीय मामलों में भारतीय सरकार सर्वोच्च थी। इस संबंध में प्रांतों को मौलिक अधिकार प्राप्त नहीं था। उन्हें जो कुछ भी अधिकार प्राप्त था वह केंद्र द्वारा प्रदत्त था।

मॉन्टफोर्ड सुधार का उद्देश्य प्रांतों में आर्थिक उत्तरदाई सरकारों की स्थापना करना था। इसके लिए प्रांतों को पूर्णतः या राजस्व के स्रोत में तथा उन्हें कर लगाने और कर्ज लेने का अधिकार चाहिए था। लेकिन उसने प्रांतों की वित्तीय शक्ति पर अनेक प्रतिबंध लगा दिए। 1919 ई के भारत सरकार अधिनियम में इस हेतु सुधार लाया गया। प्रांतों की वित्तीय व्यवस्था पर केंद्रीय सरकार के नियंत्रण को कम करने के लिए कदम उठाए गए।

प्रांतीय बजट को केंद्रीय बजट से अलग कर दिया गया।

केंद्रीय और प्रांतीय विषयों को एक दूसरे से एकदम अलग कर दिया गया। केंद्रीय विषय में आमदनी और खर्च पर केंद्र का और प्रांतीय विश्व में आमदनी और खर्च पर प्रांतों का पूरा अधिकार था। प्रांतीय विषयों को पुनः दो भागों में बांटा गया संरक्षित और हस्तांतरित विषय। संरक्षित विषयों पर भारत सरकार का कठोर नियंत्रण था, जबकि हस्तांतरित विषय लोकप्रिय मंत्रियों के अधीन थे।

प्रांतों की वित्तीय व्यवस्था को सुधारने के लिए आय के स्रोत दिए गए। अधिनियम लागू होने के समय बची हुई रकम उन्हें सौंप दी गई। प्रांतीय विषयों में प्राप्त आय, प्रांत में आय कर में वृद्धि, प्रांतीय सरकारों द्वारा भारत सरकार को दिया गया कर्ज और प्रान्तों द्वारा लगाए गए करो से आय।

प्रांतों को एकदम। प्रांतीय और स्थानीय प्रकृति के करों को लगाने का अधिकार दिया गया। अब प्रांत कुछ कर सपरिषद गवर्नर जनरल की पूर्वानुमति के बिना भी लगा सकते थे।

प्रांतों को अधिकार दिया गया कि वह अपने राजस्व की सुरक्षा पर सार्वजनिक हित की निर्माण योजनाओं के लिए कर्ज ले सकते हैं। सिंचाई हेतु निर्माण योजनाओं और अकाल सहायता के लिए प्रांतीय सरकारी कर्ज ले सकती थी। भारत में कर्ज लेने के लिए गवर्नर जनरल और विदेश से कर्ज लेने के लिए भारत सचिव की पूर्वानुमति की आवश्यकता पड़ती थी।

केंद्रीय और प्रांतीय वित्त भी की समस्या पर विचार करने के लिए लॉर्ड मेस्टन की अध्यक्षता में एक विशेष समिति की स्थापना की गई। इसके निर्णय को मेसटेन निर्णय भी कहा गया। मेस्टन निर्णय में भू राजस्व, उत्पादन शुल्क, सिंचाई और स्टॉप को प्रांतीय विषय बनाने और आयकर को केंद्रीय विषय बनाने की सिफारिश की गई। चूंकि 1919 ई के अधिनियम के अंतर्गत सरकार की वित्तीय हालत कमजोर हो गई थी इसलिए मेस्टन समिति ने यह सिफारिश की कि प्रांतों की ओर से केंद्रीय सरकार को अनुदान दिया जाए और कुछ समय बाद अनुदान की व्यवस्था का अंत कर दिया जाए।

उपर्युक्त व्यवस्थाओं से स्पष्ट होता है कि मॉन्टफोर्ड सुधार के अंतर्गत वित्तीय मामलों में प्रांतों को वास्तविक स्वायत्तता प्रदान की गई। इसका आधार भारत सरकार द्वारा निर्मित विकेंद्रीयकरण के विषय थे जिसे ब्रिटिश संसद की स्वीकृति प्राप्त थी। नई वित्तीय व्यवस्था को अधिनियम में स्थान नहीं दिया गया था। बल्कि उसे भी विकेंद्रीयकरण के नियमों द्वारा निर्धारित किया गया था। इस कारण उसे संवैधानिक अधिकार नहीं मिल पाया था। फिर भी व्यवहार में प्रांत को बहुत कुछ स्वायत्तता मिल गई थी जो भविष्य में संघीय और संवैधानिक

व्यवस्था का मार्ग प्रशस्त करने में सहायक हुई। नई वित्तीय व्यवस्था के अंतर्गत प्रांतीय मामलों में केंद्रीय हस्तक्षेप घट गया और प्रांतों को निजी वित्तीय व्यवस्था तथा स्वायत्तता का पहला पहला अनुभव प्राप्त हुआ। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि 1919 ई के अधिनियम द्वारा स्थापित वित्तीय व्यवस्था त्रुटिहीन नहीं थी। वस्तुतः यह व्यवस्था अनेक देशों से भरी हुई थी। प्रांतों के राजस्व के स्रोत लचीले नहीं थे जिन्हें आवश्यकतानुसार बहुत अधिक घटाया बढ़ाया जा सकता था। दूसरी ओर प्रान्तों के जिम्मे में राष्ट्र निर्माण के विभाग थे जिनके लिए अधिक से अधिक धनराशि की आवश्यकता थी। संरक्षित विभागों की तुलना में हस्तांतरीय विभागों को बहुत कम अनुदान प्राप्त होता था। मेस्टन निर्णय के अनुसार प्रांतों को निर्धारित अनुदान की राशि केंद्र को देना था। प्रांतों ने इस अनुदान पद्धति के विरुद्ध आवाज उठाई। फिर भी उन्हें अनुदान की व्यवस्था से छुटकारा नहीं मिला। परिणामस्वरूप उन्हें बहुत सी सुधार योजनाओं को स्थगित करना पड़ा।

1935 ई में भारत सरकार अधिनियम द्वारा संविधान का संघात्मक स्वरूप निश्चित किया गया। 1 अप्रैल 1937 ई में प्रांतीय स्वायत्तता लागू की गई। प्रांतीय स्वायत्तता को सफल बनाने के लिए प्रांतों को आर्थिक दृष्टिकोण से मजबूत और यथासंभव स्वावलंबी बनाना आवश्यक था। इसलिए अधिनियम में संघीय और प्रांतीय आय के स्रोतों को अलग-अलग कर दिया गया और प्रत्येक की विस्तृत चर्चा की गई। 1936 ई में वित्तीय संबंध की विस्तृत व्यवस्था के लिए समिति का गठन किया गया। समिति की सिफारिश को सरकार के द्वारा स्वीकार कर लिया गया। इस परिवर्तनों के फल स्वरूप 1935 ई के अधिनियम के अंतर्गत केंद्र तथा प्रांतों के वित्तीय संबंध की कई विशेषताएं थी।

अधिनियम में केंद्र और प्रान्तों के विषयों की अलग सूचियाँ दी गई थी। केंद्रीय विषयों की आय पर केंद्र का तथा प्रांतीय विषयों की आय पर प्रांतों का एकमात्र अधिकार था। संघ सरकार की आय के प्रमुख साधन थे आयात निर्यात कर, नियम कर, नमक कर, आयकर, भूमि के अतिरिक्त संपत्ति पर उत्तराधिकार कर, रेल किराए पर कर, आदि। प्रांतीय आय के कुछ उल्लेखनीय स्रोत थे भूमि और मकान पर कर, कृषि भूमि पर उत्तराधिकार कर, सिंचाई कर, रजिस्ट्रेशन शुल्क कोर्ट और स्टॉप शुल्क, मनोरंजन शुल्क और जंगल।

इसके अतिरिक्त प्रांतों के आय के अतिरिक्त स्रोत भी प्राप्त हैं कृषि भूमि के अतिरिक्त अन्य प्रकार की संपत्ति पर कर, रेल तथा हवाई जहाज के ढोने वाले समानों तथा यात्रियों पर कर आदि केंद्रीय सरकार द्वारा लगाए जाते थे तथा वसूल किए जाते थे। लेकिन उनसे प्राप्त आय को प्रांतों के बीच बांट दिया जाता था।

आयकर केंद्र द्वारा लागू किया जाता था तथा वसूला जाता था। इससे प्राप्त आय का कुछ भाग प्रांतों को दे दिया जाता था। नैमियर समिति के सुझाव के अनुसार आयकर में प्रांतों का हिस्सा 50% था।

नमक कर और निर्यात कर केंद्र द्वारा लगाए जाते थे तथा वसूल किए जाते थे। इसका पूर्ण आंशिक रूप से बंटवारा प्रांतों के बीच कर दिया जाता था। बंगाल, असम एवं बिहार और उड़ीसा को जूट निर्यात की आय का 62% हिस्सा मिल जाता था। नैमियर आयोग नया महसूस किया की हर प्रांत को वित्तीय दृष्टिकोण से स्वावलंबी होना चाहिए। लेकिन हर प्रांत के लिए यह संभव नहीं है। कुछ प्रांत आय के स्रोतों की कमी से घाटा के प्रांत थे जैसे उत्तरी पश्चिमी सीमांत प्रांत सैनिक दृष्टिकोण से सारे भारत के लिए महत्वपूर्ण थे पर इस मद पर अतिरिक्त खर्च होता था। नैमियर समिति ने यह सुझाव दिया कि ऐसे प्रांतों को केंद्र द्वारा अनुदान मिलना चाहिए। विभिन्न प्रांतों के लिए अनुदान की मात्रा नैमियर रिपोर्ट के आधार पर निर्धारित की गई।

प्रांतों को कर्ज देने का अधिकार दिया गया। कर्ज की शर्तें प्रांतीय व्यवस्थापिका द्वारा निर्धारित की जाती थी। विदेश से कर्ज लेने के लिए प्रांत को केंद्रीय सरकार की अनुमति लेनी पड़ती थी।

1935 ई के अधिनियम के अंतर्गत प्रांतों की वित्तीय स्थिति में काफी परिवर्तन लाए गए और वित्त संबंधी मामलों में प्रांतों को काफी स्वाधीनता दी गई। प्रांतों को आय के बहुत से ऐसे वित्तीय साधन उपलब्ध हुए जो काफी लचीले थे। फिर भी प्रांतों की आय उतनी अधिक नहीं बढ़ी जितनी की आशा की जाती थी। 1935 ई की संघ व्यवस्था में प्रांतीय स्वशासन प्रदान किया गया किंतु प्रांतों को वित्तीय स्वायत्तता प्रदान नहीं की गई। केंद्र प्रांतों के वित्तीय मामलों में काफी हद तक हस्तक्षेप कर सकता था। नैमियर समिति वस्तुतः में किसी प्रांत को संतुष्ट नहीं कर सका। प्रांतों की वित्तीय व्यवस्था काफी सोचनीय हो चुकी थी।

निष्कर्ष

भारत में शुरुआती ब्रिटिश काल के दौरान वित्तीय हस्तांतरण सतही और शोषणकारी था। जबकि कुछ वित्तीय जिम्मेदारियाँ प्रांतीय अधिकारियों और स्थानीय मध्यस्थों को सौंपी गई थीं, वास्तविक नियंत्रण केंद्रीकृत रहा। स्थानीय या क्षेत्रीय शासन को सशक्त बनाने का कोई वास्तविक प्रयास नहीं किया गया। शुरुआती नीतियों ने एक अत्यधिक केंद्रीकृत वित्तीय प्रशासन की नींव रखी, जिससे भारत स्वतंत्रता के बाद भी जूझता रहा।

संदर्भ

धर, पी.एन. (2000). भारत का विकास अनुभव: पी.एन. धर के चयनित लेखन। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

रॉय, तीर्थकर। (2011)। भारत का आर्थिक इतिहास, 1857-1947। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

चौधरी, के.एन. (1971)। ईस्ट इंडिया कंपनी के तहत भारत का आर्थिक विकास, 1814-58: समकालीन लेखन का चयन। कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

दत्त, आर.सी. (1901)। विक्टोरियन युग में भारत का आर्थिक इतिहास। केगन पॉल, ट्रेंच, टुबनर एंड कंपनी।

मिसरा, बी.बी. (1959)। ईस्ट इंडिया कंपनी का केंद्रीय प्रशासन, 1773-1834। मैनचेस्टर यूनिवर्सिटी प्रेस।

सरकार, सुमित। (1983)। आधुनिक भारत: 1885-1947। मैकमिलन।